मई दिवस पर विशेष

पूंजीवादी सभ्यता और संस्कृति

पूंजीवादी समाज की संस्कृति रुपये-पैसे पर आधारित संस्कृति है जिसमें चीज़ों का, सामानों का तो मोल होता है, लेकिन इंसानों का नहीं। पूंजीवाद में लोग एक-दूसरे से और ज़्यादा जुड़ते जाते हैं, एक जगह इकट्ठा होते जाते हैं, लेकिन एक-दूसरे से अलग-थलग और एक-दूसरे के लिए अजनबी होते जाते हैं। लोग पड़ोसियों के लिए तो क्या, मां-बाप और यहां तक कि पत्नी और बच्चों तक के लिए पराये हो जाते हैं।

पूंजीवादी समाज देहाती समाज के बदले शहरी समाज है। यूरोप और अमेरिका जैसे विकसित पूंजीवादी देशों में लगभग सारी आबादी ही शहरों में रहती है। पिछड़े पूंजीवादी देशों में भी शहरी आबादी तेज़ी से बढ़ रही है और देहाती आबादी घट रही है। बड़े-बड़े विशालकाय शहर पैदा हो गये हैं और थोड़ी सी जगह में करोड़ों लोग रहते हैं। टोकियो में दो करोड़ से ज़्यादा लोग रहते हैं (जापान की एक-तिहाई आबादी) तो मुंबई में डेढ़ करोड़ से ज़्यादा।

इन शहरों के बीच आवागमन बहुत तेज़ हो गया है। कारें, बसें, रेलें और हवाई जहाज, इन सबने इनके बीच की दूरी को बहुत कम कर दिया है। टीवी, फ़ोन, इंटरनेट आदि ने तो सूचना के आदान-प्रदान के लिए दूरी को शून्य कर दिया है। आज दुनिया में कहीं भी परदेश नहीं है। पहले लोग कभी-कभार गांव से बाहर दूर की यात्रा करते थे, अब यह आम बात ही नहीं, ज़िंदगी की जरूरत है।

लोगों का मुख्य पेशा अब खेती नहीं रहा। विकसित पूंजीवादी देशों में तो दो-चार प्रतिशत लोग ही खेती में लगे हुए हैं। बाकी लोग उद्योग एवं अन्य धंधों में लगे हुए हैं। अब ज़्यादातर लोग किसान या दस्तकार होने के बदले मज़दूर हैं। मज़दूर अपने लिए नहीं पूंजीपति के लिए काम करते हैं और बदले में मज़दूरी पाते हैं।

पूंजीवादी समाज में संयुक्त परिवार टूट गये हैं। अब तीन-चार पीढ़ियों के लोग एक साथ नहीं रहते। अब मां-बाप और बच्चों वाले एकल परिवार बन गये हैं। बूढ़े मां-बाप को साथ रखने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। वे उन्हें फालतू समझते हैं। व्यक्तिवाद इस कदर बढ़ गया है कि विकसित पूंजीवादी देशों में तो एकल परिवार भी ध्वस्त हो गये हैं। एकल परिवारों के ध्वस्त होने का ख़तरा कम विकसित पूंजीवादी देशों के समाज में भी मंडरा रहा है। संयुक्त परिवार टूटने से परिवार में बड़े-बूढ़ों का वर्चस्व टूट गया है। औरतें अब घरों से बाहर निकलने लगी हैं। खास तौर पर काम करने के लिए औरतों का घरों से बाहर निकलना उनकी मजबूरी बनती जा रही है।

पूंजीवाद के नये समाज ने अपनी नयी संस्कृति पैदा भी की। इस संस्कृति में सबसे प्रधान पैसा हो गया। पैसे की अहमियत इतनी बढ़ गई कि अगर किसी ने नाजायज तरीके से यानी चोरी, डकैती, स्मगलिंग, ठगी अथवा अन्य किसी भी अवैध तरीके से पैसा पैदा कर लिया तो परिवार और समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। इसके विपरीत अगर किसी ने योग्य होने के बावजूद किसी न किसी वजह से पैसा नहीं कमाया तो उसकी स्थिति उसके अपने ही घर में गली के कुत्ते के समान हो जाती है। सभी उसे दुरदुराते हैं और चूंकि वह जिंदा रह सके, इसलिए उसके आगे जूठन फेंक देते हैं। इस संस्कृति में जो व्यक्ति काफ़ी पैसा पैदा नहीं कर पाता है, वह फालतू समझ लिया जाता है और किसी कारणवश कोई पैसा कमा ही नहीं सकता तो या तो वह पारिवारिक-सामाजिक उपेक्षा के कारण विक्षिप्त हो जाता है अथवा उसके सामने आत्महत्या करने के सिवा और कोई चारा नहीं होता। प्रसिद्ध कवि निराला ने अपनी 'सरोज-स्मृति' कविता में लिखा है - 'जाना तो अर्थागमोपाय, पर रहा सदा संकुचित काय

लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर.......'

चूंकि इस व्यवस्था में मज़दूर बहुत ही कम पैसा कमा पाते हैं, इसलिए उन्हें हिकारत भरी नज़रों से देखा जाता है।

पूंजीवादी संस्कृति में लोगों के आचार-व्यवहार, नाच-गाने और मनोरंजन के तौर-तरीके पूरी तरह बदल जाते हैं। लोकगीत-लोकनृत्य अजायब घर की चीज़ बन जाते हैं। इसके बदले टीवी, सिनेमा और इंटरनेट पर आधारित मनोरंजन के नये साधन आते हैं। मनोरंजन की यह संस्कृति उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने वाली होती है और बाज़ार द्वारा नियंत्रित होती है। इसमें अश्लीलता, नग्नता और कुत्सित यौन प्रदर्शनों का बोलबाला होता है।

पूंजीवादी संस्कृति मूलत: शहरी संस्कृति है। यह भागम-भाग की संस्कृति है। यह अजनबियत की संस्कृति है। इसमें आसपास रहने वाले लोग ही एक-दूसरे को नहीं जानते हैं और न एक-दूसरे से वास्ता रखते हैं। यह एक छत के नीचे रहने वालों के बीच संवादहीनता की संस्कृति है। यह बाज़ार की संस्कृति है जिसमें हर इंसान को बाज़ार में कुछ खरीदना है और कुछ बेचना है। खरीदने-बेचने के लिए पैसा चाहिए। जितना ज़्यादा पैसा होगा, उतना ही ज़्यादा खरीद सकते हैं। इसलिए खूब पैसा होना चाहिए। 'बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया।'

पूंजीवाद की यह संस्कृति यूं ही नहीं पैदा हो जाती। यह पूंजीवाद की गति से पैदा होती है। पूंजीवाद में पूंजीपति सब कुछ तय करता है। और पूंजीपति के लिए उसकी पूंजी का मुनाफ़ा सब कुछ तय करता है। पूंजीपति को ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा होना चाहिए और यह तब होगा जब मज़दूर ज़्यादा से ज़्यादा काम करेंगे। पूंजीपति चाहता है कि मज़दूर बस काम करें और कुछ न करें। मज़दूर का परिवार, रिश्ते-नाते और अन्य सामाजिक संबंध पूंजीपति के मुनाफ़े में बाधा हैं, क्योंकि वे मज़दूर का समय खाते हैं, उसकी उर्जा कहीं और नष्ट करते हैं। इसलिए ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़े के लिए यह जरूरी है कि मज़दूर इन रिश्ते-नातों से मुक्त हो कर केवल काम करें। मज़दूर इन रिश्ते-नातों से अलग-थलग हो कर अकेला हो जाये।

दूसरी ओर, पूंजीपति के मुनाफ़े के लिए यह भी जरूरी है कि उसका माल बिके। यह तभी हो सकता है कि जब मज़दूर ज़्यादा से ज़्यादा माल खरीदे यानी उपभोक्ता बने। इसके लिए पूंजीपति उपभोक्तावाद का प्रचार करता है और मज़दूर को उपभोक्ता का प्रचार करता है और मज़दूर को उपभोक्ता में तब्दील कर देता है। मज़दूर को चाहिए कि वह केवल अपने उपभोग पर ध्यान दे और किसी चीज़ पर नहीं।

इस तरह मज़दूर काम करने वाले और उपभोग करने वाले जानवर में तब्दील हो जाता है। अत्यधिक काम और लालच भरे उपभोग के बीच दौड़ते हुए उसे इतनी फुर्सत नहीं होती कि वह दो घड़ी सांस लेकर सोचे कि वह किधर जा रहा है।

और वह सोचना भी नहीं चाहता कि क्योंकि सोचने पर उसे पता चलता है कि यह सब बहुत कष्टदायक है। उसके लिए सभी चीजें पराई और उत्पीड़क हैं। उसके अपने लोग भी उसके लिए पीड़ा के माध्यम ही हैं, क्योंकि वह न तो उनके हिसाब से चलना चाहता है और न ही वे उसके हिसाब से। दूसरों से कोई अपेक्षा पालना केवल निराशा को ही जन्म देता है। इसलिए इससे बचा जाये और अपने खोल में समेट लिया जाये। यही सबसे अच्छा रास्ता है।

और जब पूंजीवादी मनुष्य यह करता है तो वह लाखों-करोड़ों की भीड़ में धक्का-मुक्की करते हुए अजनबी जीव बन जाता है जो भीषण मानसिक उद्विग्नता, तनाव और संत्रास का शिकार होता है। वह काम की जगह, दुकान और घर की कभी न खत्म होने वाली परिक्रमा करते हुए वहां पहुंच जाता है जहां उसके जीवन की कोई सार्थकता उसे नहीं दिखाई देती। वह ऐसे ही बाकी ज़िंदगी काट देता है या फ़िर किसी आसारामजी बापू या बाबा रामदेव की शरण लेता है अथवा शराब, गांजे, अफ़ीम, चरस में डूब कर हाड़तोड़ मेहनत करते हुए एक दिन इस दुनिया से विदा ले लेता है। पूंजीवादी संस्कृति अत्यंत ही भ्रष्ट है।

इस संस्कृति में औरतों को भी खरीद-फ़रोख्त की वस्तु में तब्दील कर दिया जाता है और इस संस्कृति के पैरोकार वेश्यावृत्ति जैसे घिनौने पेशे को भी वैधानिक दर्जा देने की मांग करते हैं। कई विकसित देशों में तो वेश्यावृत्ति को वैधानिक दर्जा दिया भी जा चुका है। इसके अलावा इस संस्कृति के प्रवक्ता समलैंगिकता और अन्य भोगवादी कुत्सित प्रवृत्तियों के पक्ष में भी आवाज़ उठाते हैं। विवाह जिसे एक पवित्र संस्था माना जाता था, उसे खत्म कर ये 'लिव-इन-रिलेशनशिप' पर जोर देते हैं। एक से जी भर गया तो उसकी जगह दूसरी महिला से संबंध बनाते इन्हें जरा भी देर नहीं लगती। इसे नारी स्वातंत्र्य का झूठा नाम भी दिया जाता है। इस पूंजीवादी संस्कृति में सबसे बुरा हाल बच्चों का होता है। वे अपनी परंपरा, अपने परिवार से पूरी तरह कटे एकाकी जीवन जीने को बाध्य होते हैं और परिणामस्वरूप अधिकांश हीन भावना, मानसिक विकृतियों और कुप्रवृत्तियों के शिकार हो जाते हैं। उन्हें भी बचपन से ही यही सिखाया जाता है कि आदमी के लिए सबसे बड़ा काम पैसा कमाना है चाहे जैसे भी हो। यही कारण है कि हम मध्यवर्गीय किशोरों को जो शारीरिक मेहनत नहीं कर सकते, अपराध की दुनिया में प्रवेश करते देखते हैं और किशोरियां बड़ी आसानी से पैसे के लिए देह-व्यापार के धंधे में उतर जाती हैं। पूंजीवादी संस्कृति का आरध्य देव पैसा है और पैसे के लिए कुछ भी करना अंतत: नैतिकता-अनैतिकता के बंधनों से परे माना जाता है।

इस संस्कृति में 'सामाजिक प्राणी' कहा जाने वाला मनुष्य इतना ज़्यादा सामाजिक अलगाव का शिकार हो जाता है कि सारी सुख-सुविधाओं के रहने के बावजूद वह अपने जीवन की सार्थकता को समझ नहीं पाता। जीवन उसके लिए एक तरह के बोझ के समान होता है। जो ग़रीब लोग हैं, उनका सारा समय तो रोटी का जुगाड़ करने में बीत जाता है, पर संवेदनशील अमीरों को भी यह संस्कृति रास नहीं आती। यही कारण है कि जो देश जितने ज़्यादा धनी हैं, वहां आत्महत्या की दर भी सबसे ज़्यादा है, उदाहरण के लिए, जापान और स्वीडन। भोग और अति भोग भी लोगों को शांति नहीं दे पाता। फूलों से सजी सेज कांटों के समान गड़ने लगती है और मनुष्य शांति की तलाश में एक से बढ़ कर एक उलटे-पुलटे निरर्थक काम करने लगता है। पूंजीवादी संस्कृति मनुष्य और मनुष्य के बीच अलगाव पैदा करने वाली संस्कृति है। यह संस्कृति नग्न भोगवाद को बढ़ावा देने के अलावा और कुछ भी नहीं करती। इस संस्कृति में कुछ भी रचनात्मक करने और मनुष्य के सौंदर्यबोध को विकसित करने की क्षमता नहीं है। यह महज पतनशीलता को बढ़ावा देने वाली और आत्मघात की ओर ले जाने वाली संस्कृति है। इस पतनशील संस्कृति से मुक्ति तभी पायी जा सकती है जब शोषण के खिलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष आगे बढ़े। जैसे-जैसे मज़दूरों का संघर्ष आगे बढ़ेगा, उनका संगठन मजबूत होगा, इस पूंजीवादी संस्कृति के लिए ख़तरा पैदा होगा। जब दुनिया में मज़दूरों का शोषणविहीन राज स्थापित हो जायेगा, तभी इस आत्महंता पूंजीवादी संस्कृति का अंत होगा। मज़दूरों को यह समझना होगा कि अगर वे इस आत्मघाती संस्कृति के जबड़े से मुक्ति चाहते हैं तो संगठित होकर इस व्यवस्था के खिलाफ़ संघर्ष तेज़ करें। पूंजीवादी व्यवस्था का विकल्प समाजवादी व्यवस्था ही हो सकती है और यह सर्वहारा संस्कृति होगी जो अब तक इतिहास में मानवता ने जो महान मूल्य अर्जित किये हैं, उन्हें आगे बढ़ाने के साथ नये मूल्यों का सृजन और विकास करेगी। सर्वहारा की संस्कृति पैसे की सर्वोच्चता और भोगवाद पर आधारित नहीं होगी, बल्कि मानव श्रम की अर्थवत्ता पर आधारित होगी। यह संस्कृति मनुष्य को मानवता के उच्चतम सोपानों तक ले जायेगी।

- इंकलाबी मज़दूर केंद्र/ मोर्चा

पूंजीवादी संस्कृति कितनी निकृष्ट है और अलगाव को किस हद तक बढ़ावा देने वाली है, इसका पता इस तथ्य से चलता है कि बहुत से संवेदनशील कवि और कलाकार इस संस्कृति द्वारा पैदा किये जाने वाले दबाव को सह नहीं पाये और उन्होंने आत्महत्या कर ली। यह संस्कृति मनुष्य को जानवर में तब्दील कर देती है। बीसवीं सदी के दूसरे-तीसरे दशक में विश्व साहित्य में पूंजीवाद से पैदा हुए अलगाववाद और उसके संत्रास का चित्रण बड़े पैमाने पर हुआ है। सार्त्र, कामू, काफ्का जैसे लेखकों ने पूंजीवादी संस्कृति की सड़ांध को परत-दर-परत दिखाने का काम किया। उन्होंने यह दिखाया कि कैसे यह संस्कृति मनुष्य को एक घृणित तिलचट्टे में बदल देती है।

इस पतनशील संस्कृति के प्रभाव में प्रतिक्रियास्वरूप साहित्य में मूल्यहीनता और अराजकता का दौर शुरू हो गया। नग्नतावाद का प्रभाव बढ़ता चला गया। समाज में युवाओं ने अराजक विद्रोह स्वरूप 'हिप्पी संस्कृति' अपना ली जो साम्राज्यवाद के गढ़ अमेरिका से शुरू हुई। इस अराजक हिप्पी संस्कृति के साहित्य के प्रतिनिधि कवि गिन्सवर्ग थे जिन्होंने भारत की यात्रा की और यहां के कवियों-लेखकों पर 'हिप्पी संस्कृति' का पूरा प्रभाव डाला। ज़्यादातर कवि-लेखक गिन्सवर्ग और उनकी मंडली के प्रभाव में गांजा, अफीम, चरस, भांग आदि नशीले पदार्थों का सेवन कर रचना करने लगे और वस्त्र तक उतार डालने पर उतारू हो गये। इन्होंने भूखी पीढ़ी, नंगी पीढ़ी और विद्रोही पीढ़ी के नाम से लिखना शुरू किया। इस तरह के विद्रोही कवि-लेखकों में कुछ तो ऐसे थे जिन्होंने अपना घर-द्वार छोड़ कर वेश्याओं के यहां ही स्थायी ठिकाना बना लिया। इस प्रतिक्रिया में गिन्सवर्ग के साथ शामिल लेखक-कवि अत्यधिक मद्यपान और नशाखोरी के कारण असमय ही काल-कवलित हो गये, पर उनकी कविताओं में पूंजीवादी समाज-व्यवस्था जो संत्रास पैदा करती है, उसकी पूरी झलक मिलती है।

पूंजीवादी संस्कृति में पैदा होने वाले अलगाव को पूरी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त करने वाले हिंदी लेखकों में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, रवीन्द्र कालिया, स्वदेश दीपक आदि प्रमुख हैं। ये हिप्पी संस्कृति से प्रभावित नहीं हुए और अपने स्तर पर इन्होंने पूंजीवादी समाज और संस्कृति के त्रासद एवं संत्रासपूर्ण प्रभावों को सामने लाने का काम किया।

इस बीच पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध में साहित्यकारों ने प्रगतिशील आंदोलन भी चलाया जो वामपंथी आंदोलन के भटकावों और ठहराव के कारण ज़्यादा प्रभावशाली नहीं हो सका। हां, व्यक्तिगत तौर पर जुझारू और व्यवस्था-विरोधी कवि-लेखकों ने एक से बढ़ कर एक रचनायें लिखीं और पूंजीवादी समाज एवं उसकी मानव-विरोधी संस्कृति को नंगा करने का प्रयास किया। बावजूद इसके साहित्य में 'लघु मानव' का भी एक आंदोलन चलता रहा जो पतनशीलता की प्रतिक्रिया से पैदा हुए अस्तित्ववादी दर्शन व चिंतन से प्रभावित था। आज भी युवा संवेदनशील कवि रह-रह कर व्यर्थता-बोध की भावनाओं से भर जाते हैं, क्योंकि समाज में ऐसी शक्तियां अभी तैयार नहीं दिखतीं जो पूंजीवादी दानवों से अंतिम जंग की शुरुआत कर सकें। यहां हम एक युवा कवि सतीश चंद्र झा की कुछ कविताएं प्रस्तुत कर रहे हैं जो पूंजीवादी समाज एवं संस्कृति में पैदा होने वाले अलगाव को व्यंजित करती हैं।

तुम
काले बादल
घूम रहे हैं
मंडरा रहे हैं
हवाएं धीमे बह रही हैं
बगीचे में
फूल मेरे मन की
व्यथा को
अपने रंगों से सराबोर कर
देता है
और उसमें
अपनी सुरभि बिखेर देता है
जो और कोई नहीं
तुम हो।
विवश
सूखी
और हरी घासों...
झाड़ियों, पेड़ों
सूखी, पतली
लकड़ियों के बीच से
गुजरता मैं
उम्र के इस मोड़
पर पहुंच गया हूं
जहां मैं सिर्फ़
अकेला हूं
और ये चीजें
जो मेरी व्यथा सुनती हैं
और विवश चुप रहती हैं।
तुमसे बढ़ कर
कमरे की खिड़की से
दिखाई पड़ता है
आकाश का एक कोना
और उसके नीचे

शेष पेज 6 पर